शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

'कासिका' में लोक जीवन की अभिव्यक्ति

डॉ. रामानंद तिवारी
स्नातकोत्तर शिक्षक (हिंदी)
जवाहर नवोदय विद्यालय
दुरेड़ी, बाँदा, उत्तर प्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

भारतीय मनीषा में विचारतत्त्व के साथ भावतत्त्व को भी बेहद महत्त्वपूर्ण माना गया है। साहित्य का महत् उद्देश्य लोक जीवन में मानवीय संवेदना का भाव जगाकर समाज कल्याण की योजना तैयार करना है। आज जबकि समूचा विश्व मूल्य संक्रमण और हृदयशून्यता के दौर से गुजर रहा है तब लोक संस्कृति के संरक्षण की बात और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। एक समय वह था जब शहरों और गाँवों की सामूहिक चेतना के बीच कोई भी विभाजकता नहीं थी। देश में जाति और संप्रदाय की कोई दूषित राजनीति नहीं थी। लोकजीवन में मानवीय मूल्यों की अहमियत थी। आज स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई है। शहरों का आत्मगौरव लुंठित हो रहा है और गाँव अपनी संकुचित सीमाओं में सिमट रहे हैं। ऐसी स्थिति में साहित्य के सामने खंडित लोक संस्कृति की रुद्धप्राय हुई धारा को गति देना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। लोक संस्कृति के इस प्रसुप्त वातावरण में डॉ कमलाकर पांडेय द्वारा रचित 'कासिका (भोजपुरी भजन गीति' लोकमानस में एक नई चेतना का संचार करती है। 'कासिका' के रचनाकार डॉ. कमलाकर पांडेय का.सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या, फैजाबाद में हिंदी विभाग के अध्यक्ष थे और साथ ही मेरे शोध निर्देशक भी। उनका व्यक्तित्व विलक्षण था। ज्ञान में सघनता तथा स्वभाव में सरलता और तरलता, दुनिया में रहते हुए भी दुनियादारी से हमेशा दूर बिल्कुल पद्मपत्रमिवाम्भसा। वे एक ऐसे ज़िंदादिल इंसान थे, जो कविताएँ लिखते थे और कविताओं में दिखते भी थे। उन्होंने 'कासिका' की रचना के माध्यम से मूल्यहीनता के अँधेरे में घिरी लोक संस्कृति और उसकी परंपरा को पुनरुद्दीप्त करने का प्रयास किया है।

'कासिका' में लोक जीवन

'कासिका' में लोक जीवन के वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं आध्यात्मिक पक्षों का गहन अनुशीलन किया गया है। लोक संस्कृति जीवन की विभिन्न राग-रागिनियों का वह सुर संगम है, जिसमें समता, ममता और मैत्री की अनुगूँज सुनाई देती है। गीति की शुरुआत मंगलाचरण से की गई है, जहाँ रचनाकार ने आत्मसमर्पण और दैन्य भाव प्रकट करते हुए माँ सरस्वती से शरणागति की याचना की है। इस याचना की अंतर्भूमि में एक रूपक झाँकता है, जिसमें लोकहृदय का भावनात्मक मर्म उद्घाटित हुआ है। लोकानुभव के द्वारा यह ज्ञात होता है कि एक अबोध बालक को अपनी माँ की अपेक्षा मौसी का साहचर्य अधिक प्रिय लगता है। बहन के यहाँ से अपने घर जाने को तैयार मौसी के साथ चलने के लिए नाना प्रयत्नों के बावजूद वह अपना बालहठ नहीं छोड़ता। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य के परिप्रेक्ष्य में 'कासिका' में माँ और मौसी के रूप में क्रमशः लक्ष्मी और सरस्वती का संकेत ग्रहण किया गया है। इसमें संशय नहीं कि भौतिकता में आसक्त व्यक्ति को उसके जीवन का लक्ष्य केवल भौतिक ऐश्वर्य दिखाई देता है। इसीलिए वह लक्ष्मी का अनुसरण

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अक्टूबर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

करता है। जबकि एक सरस्वती उपासक के जीवन का उद्देश्य अर्थ संग्रह नहीं, अपितु जीवन के 'अर्थ' का अन्वेषण करना है। वह धनोपार्जन की योग्यता रखते हुए भी धन को आवश्यकता से अधिक महत्त्व नहीं देता। वह शब्दों में 'अर्थ की खोज' को ही जीवन का ध्येय मानता है। 'कासिका' में लोक जीवन के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का यह उदात्त रूप वैयक्तिक होने के साथ-साथ वस्तुपरक भी है।

धावत-धावत अब थाकल बटोहिया
माई से अधिक होले मउँसी क नेहिया
अब तनी अँगुरी धरावऽ कि थाकल परान मोरि मैया।[1]

लोक संस्कृति में जीवन का सुंदरतम रूप दिखाई देता है। समय और यथार्थ के ध्वंसावशेष में भी जीवन की अनबुझी उम्मीद टिमटिमाते नक्षत्र की तरह मन में रह-रहकर कौंध जाती है और ऐसा लगता है कि जैसे कोई लोक आस्था हृदय की सोई हुई रागिनियों को जगा रही हो। यह अदृश्य प्रेरणा कोई बाह्य उद्वेलन नहीं, अपितु अपने ही भावलोक की अंतर्ध्वनि है, जिसमें लोक जीवन का मंद्र स्वर स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है। 'कासिका' में अयोध्या को विरागी तपोभूमि कहा गया है। यह भोग की नहीं, तपने की जमीन है। राम लोक मर्यादा का पालन करते हुए पिता की आज्ञा पर वन के लिए चल पड़ते हैं। उधर भरत विरक्त भाव से राजधर्म का दायित्व स्वीकार करते हैं और लक्ष्मण राम के त्यागमय संकल्प को देखकर उनका अनुसरण करते हैं। कर्तव्य और भावना के समन्वय का यह रूप लोक धर्म की अद्भुत मिसाल पेश करता है।

"मोर अवधपुरी ह ई बिरागी नगरी
राम जी अजोधिया से जंगल क राह धइलँ
x x x x
भरत चलावें राजकुटि ले साज-बाज
राम नाम रटत मगन मन री
राज-साज-बाज छोड़ि सकल लखनलाल
सेवा क मिसाल बने छाया तन री"[2]

इसी प्रकार उर्मिला का जीवन भी त्याग और तपस्या का जीवन है, जो नारी-शक्ति की जीवंतता को दर्शाता है। उर्मिला लक्ष्मण के कर्तव्यभाव और भ्रातृप्रेम को अपने हृदय में स्थान देती हैं और व्यक्तिगत सुखों की चाह में वे कोई ऐसा काम नहीं करना चाहती जो उनके कर्तव्य में बाधक बने। वे विरह-विकलता की आग में क्षण-प्रतिक्षण जलती और धुआँ होती रहती हैं। "उर्मिला भइली जरल रसरी।"[3] उर्मिला के इस उदात्त चरित्र में भारतीय गृहिणी की संकल्प-सिद्धि का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है।

दर्शन वेदों के आप्त वचन की मीमांसा करते हैं और पुराण विभिन्न आख्यानों एवं दृष्टांतों के द्वारा उनकी सत्यता प्रमाणित करते हैं। पौराणिक आख्यान के माध्यम से कासिकाकार ने काशी की महिमा का गायन करते हुए कुबेर का गणेश रूप ग्रहण करने के साथ विभिन्न भाषा-बोलियों के उद्भव का साक्ष्य स्तुत किया है। सरस्वती के वाणी नाद से जहाँ विभिन्न भाषाओं की उत्पत्ति हुई वहीं गणेश जी की तोतली वाणी से विभिन्न बोलियों का जन्म हुआ। तोतली वाणी में भाषा का परिष्कार नहीं होता। अत: भोजपुरी की उत्पत्ति गणेश जी की तोतली वाणी से हुई होगी, जो लोक हृदय की कोमल अमूर्त भावनाओं को अभिव्यक्त करती है। 'कासिका' में पौराणिक आख्यान की यह कांत कल्पना कितनी सजीव है :

"कासिका बनाइ बोली मसिरी में घोरि बोरि
धइलँ पुरुबिहन देस नगर उसे कासी हमरोऽऽऽ
कासिका ह भोजपुरी, भोजपुरी कासी क

तोतर गनेस जी क बोल नगर उहे कासी हमरोsss"[4]

शिव की नगरी काशी तीनों लोकों से न्यारी है। वहाँ जीवन और अध्यात्म का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। वह साधना की भूमि है, जहाँ शब्द-शिल्प को नहीं अपितु अर्थ सौष्ठव के संधान को महत्त्व दिया जाता है। भाषा का कोरा शब्द जाल बुनने वाले लोग भाषा की पकड़ पर भले ही अपना दावा करें, किंतु लोक जीवन के अर्थ ज्ञान के बिना शब्दों का बखान एक प्रलाप मात्र है। यहाँ लोक जीवन के अर्थ ज्ञान से तात्पर्य लोक परंपरा के व्यावहारिक ज्ञान से है। कोई भी शब्द शिल्पी साहित्यकार होने की पदवी भले ही प्राप्त कर ले, किंतु लोक भावना का अर्थ समझे बिना उसका साहित्य चिंतन कालजयी साहित्य नहीं बन पाता। तुलसीदास जी का रामचरितमानस और कबीर की बानियाँ आज भी इसीलिए लोक जीवन का कंठहार बने हुए हैं कि वे लोक धर्म का अनुसरण करते हैं। गंगा और काशी के प्रति आज भी वही लोक विश्वास है, जो पहले था। जब लोक हृदय में आस्था की लहर उठती है तो तीर्थ यात्रियों का समूह सत्तू-आटा आदि के साथ विश्वनाथदर्शन और गंगा स्नान के लिए उमड़ पड़ता है। गीतिकार ने इस लोक आस्था को गहराई से समझने का प्रयास किया है :

"तनी गंगा जी में डुबुकी लगवा द बचवा
हमके चारों खूँट कासी क देखा द बचवा
सगरी समान ले लसतुवापसान ले ल
(हो) दिया बाती बेल पतिया जुटा ल बचवा"[5]

'कासिका' में लोक हृदय की विभिन्न रागात्मक अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण हुआ है जिसे देखने से ऐसा लगता है जैसे जीवन के मूर्त-अमूर्त बिंब हमारे सामने एक सचित्र घटनावली प्रस्तुत कर रहे हों। जीवन सत्य के प्रकाशन के लिए खरी-से-खरी बात को भी सहज रूप में कह देना रचनाकार के व्यक्तित्व की स्पष्टता को दर्शाता है। 'कासिका' में लोगों के जीवन की रीति-नीति के प्रति क्षोभ प्रकट करने के साथ स्वार्थी समाज की संकीर्ण मानसिकता पर भी गहरी चोट की गई है। काल समुद्र की लहरों से खेलने के लिए जहाँ लोगों में साहस का भाव दिखाई देता है, वहीं विसंगतियों के थपेड़ों से जीवन की डगमगाती नाव को देखकर मन विचलित-सा हो जाता है। इस अस्थिरता के वातावरण में सभी को केवल अपनी-अपनी चिंता है :

"मनई के संग जब कनई सनाला
तब तक मन अकुताला
बनल रहे नंदलाला
जग क चले ना सनेह बाप-माई
अउरी मितरता क केतना समाई
एक खियाल ना भुलाला
बनल रहे नंदलाला"[6]

लोक हृदय में जीवन की केवल सामाजिक-सांस्कृतिक भावनाओं की घुमड़न ही नहीं है, वहाँ आध्यात्म परंपरा की कौंध भी दिखाई देती है। लोक परंपरा के विभिन्न अनुष्ठान अध्यात्म भावना से भी अनुप्राणित हैं। लोक संस्कृति में इसलिए भी कृत्रिमता का अभाव है, क्योंकि वहाँ अध्यात्म की सरसता का माधुर्य है। यह संपूर्ण जगत माँ भगवती का लीला कौतुक है। जीवन के हर क्रियात्मक पहलू और प्रकृतिगत परिवर्तनों में उसी की योगमाया का रहस्य छिपा हुआ है। अपनी अज्ञानता और अभिमान के कारण जब व्यक्ति स्वयं को सर्वशक्तिमान मान बैठता है तो वह मानव से दानव बन जाता है। मधु और कैटभ जैसी दुर्दांत आसुरी शक्तियों का आशय ग्रहण कर कासिकाकार ने एक अहंकारी जीव की

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

इसी अमानुषिक वृत्ति का परिचय दिया हैय जो लोकानुभव में आज की देखने को मिलता है :

"मधु औ कैटभ दुई बेधर्मी रहे महा अभिमानी
अपने के भगवान समुझि के करें खूब मनमानी
तूरि डाले चाहें बरम्हाँ क विधनवा
बिस्तार से बतावे के परी"[7]

सत्य की अनेक पर्तें हैं और उन पर्तों के बीच लोक जीवन के महासत्य को खोजना बहुत कठिन है। गीतिकार ने लोक संस्कृति के कथासूत्र को साधे रखने के लिए दुर्गासप्तशती की कतिपय महत्त्वपूर्ण कथाओं का भावात्मक गुंफन किया है, जहाँ कथ्य, संवाद और शिल्प साथ-साथ चलते हैं। उसे देखकर ऐसा लगता है, जैसे किसी सुसज्जित मंच पर संवाद और अभिनय के साथ संपूर्ण दृश्यावली क्रमिक घटना लेकर प्रस्तुत हो रही हो और हम उस कथावस्तु का एक अंग बनकर लोक संस्कृति के उस महासत्य के निकट पहुँच गए हों, कबीर के लाली देखन मैं चली मैं भी हो गई लाल[8] की तरह। लोक परंपरा के विकास में सत्वगुण की प्रमुखता रहती है और इसी के धरातल पर लोक जीवन का वैभव फलता-फूलता है। सत्वगुण से विमुख होना मनुष्यता के पतन का सबसे बड़ा कारण है। भौतिक सुखों की एषणा और उनके भोग की इच्छा मनुष्य को ही नहीं, देवताओं को भी पागल बना देती है। कासिकाकार ने प्रकारांतर से मनुष्य के जीवन की मनोवृत्तियों की इस विरोधी परिवर्तनशीलता का बड़े स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है :

"सत-रज-तम ई बिसम खेलिया बार-बार दोहरावे,
एही से धरतिया पर एक ही हवा कबो नाहीं चलि पावे।
देवता बिजय पाई गइलँ अघाइ,
मानों सब भय भागल भोगवा की आहटऽ में,
सुखवा की चाहत में देव-कुल पागल"[9]

लोक-हृदय की संवेदना को अभिव्यक्त करने वाले विभिन्न तथ्यों एवं प्रसंगों की प्रस्तुति के लिए एक समर्थ लोक-भाषा की आवश्यकता होती है। आज के इस बनावटी युग में लोक-संस्कृति और लोक-भाषाएँ उपेक्षित-सी हो गई हैं। कोमल प्रकृति वाली लोक-संस्कृति खड़ी भाषा के खरेपन को बर्दाश्त नहीं कर पाती। उसके लिए सहज लोक-भाषा की संवेदना अपेक्षित है। इस दृष्टि से भोजपुरी की लोकप्रियता असंदिग्ध है। 'कासिका' की भाषा लोक-संवेदना की भाषा है, जो एकदम सहज और सुबोध है, जहाँ विचारों की प्रौढ़ता के साथ भावों की सघनता और मृदुता भी है। लोक भाषा भावनात्मक संवाद का एक महत्त्वपूर्ण लयात्मक माध्यम है। इसमें हर संवेदना को व्यक्त करने के लिए अलग-अलग संज्ञा, विशेषण और क्रिया के शब्द मौजूद है। इस दृष्टि से भोजपुरी एक समृद्ध भाषा है जो बिना किसी औपचारिकता के हमसे सीधे संवाद करती है। यह संवाद की भाषा है, जहाँ कुछ भी अनकहा नहीं रह जाता और इसमें किसी भी प्रकार की कृत्रिमता की गुंजाइश भी नहीं होती। 'कासिका' में भी संवेदनाओं की विविधता के लिए अलग-अलग और उपयुक्त शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है, जहाँ अलग-अलग भाव-प्रसंग, दृश्य एवं परिस्थिति विशेष के अनुसार बिंब अपना रूप बदल लेते हैं। 'कासिका' में शब्द विन्यास राग, सुर और ताल की लहरों पर नाचता हुआ-सा लगता है। कहीं-कहीं तो भाषा घोड़े की टाप की तरह अनुतान के साथ गतिशील और चक्रिल होती हुईसी प्रतीत होती है। ऐसा लगता है जैसे भाषा में सत्त्व, रजस और तमोगुण का एक साथ सन्निवेश हो। सभी कथ्य रूपों का आश्रय

लिए हुए आँखों के सामने तैरते दिखाई देते हैं जो पाठकों को सहज ही अभिभूत कर देने वाले हैं :

"काली करे ली समर आर-पार, चारों ओरियाँ दुधार चमके
मुँहवाँ खोलत लागे परबत-खोहवा
रथ-हाथी-घोड़वा समायँ जानें कहवाँ
जायँ चट जम की दुवार, चारों ओरियाँ दुधार चमके।"[10]

लोक-भाषा पर गीतिकार की जबरदस्त पकड़ है। कहीं-कहीं विद्यापति की तरह लोक-हृदय में तैरती हुई भाषा का प्रयोग किया गया है। दुर्गा के युद्ध भूमि में उतरने पर पूर्णिमा की छटा छा जाती है तथा महाकाली के पहुँचने पर सावन की घटा घहराने लगती है। यहाँ पर कथ्य, वस्तुशिल्प और बिंब का प्रभावकारी प्रयोग देखने को मिलता है, जो लोक जीवन की परंपरा और भाव छटा को बेहद रोमांचक ढंग से प्रस्तुत करता है : 'देख दुरुगा अइली पुनिमाँ क उगलि अँजोरिया'[11] झूम-झूमकर गाए जाने वाले गीतों में मैहर और पाटनदेवी के गीत भी सहज ही अभिभूत कर देने वाले हैं। उन गीतों को देखने से ऐसा लगता है जैसे ढोल-झाल पर झूमता हुआ समाज हो, जहाँ लोक-हृदय की भावनात्मक घुमड़ का तात्कालिक प्रवाह देखा जा सकता है :

"आगे-आगे काली मइया पछवा जोगिनियाँ
होए बजावें झलिया
ढोल डमरू मजिरवा
होए बजावें झलिया"[12]

कविता जीवन का कल्पवृक्ष है। वह मनुष्य की सभी कामनाओं की पूर्ति करती है तथा निराशा के क्षणों में हारे हुए व्यक्ति को धीरज देती है। जीवन के हर संग्राम और घमासान में कविता सबसे बड़ा हथियार है। कविता की अभिव्यक्ति के अलग-अलग रूप हैं। वह मनुष्य को केवल कर्म और पुरुषार्थ से ही नहीं जोड़ती, अपितु धर्म और अध्यात्म के भावनात्मक संसार में भी ले जाती है। भगवती की महिमा के प्रति लोक-जीवन में अप्रमेय आस्था है। क्षण-क्षण जीने-मरने की आशंका में जब चित्त आंदोलित हो उठता है तब किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में लोग भगवती की शरण में जाते हैं। गीतिकार ने आत्मपीड़ा के माध्यम से लोक-जीवन की व्यथा का गायन किया है, जो बड़ा ही वेदनात्मक और संवेदनात्मक है :

"सावन कारी बदरिया घुमड़ि जस बरसे हो
किरपा क ककर बरसात उदास मन हरसे हो
कोखिया क हारलि बहुरिया जिनिगिया से हारलि हो
थकि के गिरलि चउकठवाँए काली के गोहरावे ले हो[13]

'कासिका' में सीताराम झूला गीति के माध्यम से रचनाकार ने राम और सीता के झूला झूलने विषयक लोक परंपरा का भावग्राही चित्रण किया है। प्रेम में आलोड़ित लोक-हृदय की उच्चतर भावदशा की स्थिति में क्या स्त्री और क्या पुरुष दोनों ही उस रसबोध की महारास अवस्था में पहुँचकर एकमेक हो जाते हैं। लोक में आज भी झूला झूलने और झुलाने का प्रचलन है। लोक इच्छा की तृप्ति हेतु सीता राम से झूला झुलाने का आग्रह करती हैं :

राजघाट सरजू की तिरवा हे हे पिया, झुलना लगा दऽ'[14] कभी स्नेहवश राम सीता को झुलाते हैं तो कभी सीता राम को :

कबो राम जी झुलावें, कबो जनक लली
देखि नेहिया क जोर दाँते अँगुरी परी"[15]

बारिश का मौसम है। आकाश में घुमड़ते बादल झूम-झूमकर बरस रहे हैं और रह-रहकर बिजली भी चमक रही है, जिसे देखकर ऐसा लगता है

जैसे बादल बिजली को झूला झुला रहा हों और बिजली भी बादल के साथ झूला झूल रही हो। 'कासिका' में राम का बादल और सीता का बिजली की दृश्य छटा के रूप में जो वर्ण सादृश्य का अद्‌वितीय संयोजन है, वह लोक परिवेश के सौंदर्य का अनोखा चित्र प्रस्तुत करता है। राम और सीता के उस प्रेमोत्सव को देखकर सखियाँ भावविह्‌वव हो जाती हैं और स्वयं भी कजली गीत गाने लगती हैं :

"उतर झुमकि पिया सिया के झुलावें
मेघ-सँग बिजुली लचकि नाचि धावे
सखी लोग गावें ला कजरिया
हे हे तुहूँ कजरी सुना"[16]

मनुष्य की हर विचार यात्रा मन से शुरू होती है और मन में ही आकर समाप्त हो जाती है। अतः जीवन की साधना के लिए मन की साधना बहुत महत्त्वपूर्ण है। मन के भीतर ही सारे तीर्थ, व्रत और पूजा-अनुष्ठान की प्रवृत्तियाँ अपने रूपाकार ग्रहण करती हैं और इसी से बाह्य संसार का रूप भी निर्मित होता है। कासिकाकार ने मौनी मस्तराम के जीवन-दर्शन के माध्यम से मन की 'अनूप साधना' करने पर बल दिया है : 'मन में तीरथि करऽ मनवें में जप-तप मन नहववले नहाई दुनियाँ"[17] कबीरदास ने भी मन की इसी साधना को सर्वोपरि माना है।[18] यह धरती कर्मलोक है। लोक-जीवन में खेती-किसानी और सभी घरेलू कार्यों से लेकर पारस्परिक रिश्तों-नातों के प्रति आत्मिक जुड़ाव और तीज-त्योहारों की परंपरागत मान्यताओं को घर-परिवार की सुख-समृद्धि का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार माना जाता है। घर-गृहस्थी के संपूर्ण दायित्वों का पालन करते हुए गाँवगिराँव और समाज के हित की बात सोचना ही सच्चा लोक-धर्म है। डॉ. कमलाकर पांडेय ने 'कासिका' में इस लोक-परिदृश्य का बड़ा ही सजीव चित्रांकन किया है : घरवा सँवार खेती-पतिया सँवारऽ दूसरों की हित क विचार करऽ होनहार बछरू गांव-गिराँव-समाज सँवार"[19] 'कासिका' के अंतिम चरण में गीतिकार ने भोजपुरी के संपूर्ण लोकजीवन में रच-बस जाने की कामना प्रकट की है :

धाई खेत-खलिहान, छोट-बड़का नहान
छट्ठी मूंड़नऽ बियाह गूँजी भोजपुरिया
x x x x
कतहूँ तितली क पाँखिए कतहूँ हिरनी क आँखि
नाचत मोर फहराई पाँखिए भोजपुरिया"[20]

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कासिका' में लोक-जीवन के समस्त पक्षों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। लोकजीवन की अभिव्यक्ति के लिए लोक-भाषा एक प्रमुख माध्यम बन सकती है। इस गीतिकाव्य की रचना स्वयं लोक-भाषा में हुई है इसलिए इसमें लोक-जीवन की अभिव्यक्ति पूरी सफलता के साथ हो सकी है। चाहे जीवन का क्षेत्र हो या भाषा का अथवा भाषा के माध्यम से साहित्यिक संरचना का, सामाजिक जीवन में लोक की प्रतिष्ठा के बिना साहित्य की कल्पना अधूरी है। लोक मूल्यों के संरक्षण में ही जीवन का संरक्षण है, क्योंकि लोक में ही जीवन-छवियों की संपूर्ण अभिव्यक्ति संभव है। लोकजीवन पर आधारित इस रचना की पठनीयता के द्‌वारा लोक-मूल्यों को बल मिलेगा और आज के इस घुटनभरे वातावरण में मनुष्यता को जीवित रहने के लिए प्राणवायु भी।

संदर्भ ग्रन्थ

1 कासिका, भोजपुरी भजन गीति, डॉ. कमलाकर पांडेय, सत्यदेव प्रकाशन, अयोध्या,फैजाबाद, उत्तर प्रदेश
प्रकाशन वर्ष 2003, पृष्ठ 1

2 वही, पृष्ठ 4-5

3 वही, पृष्ठ 5

4 वही, पृष्ठ 5

5 वही, पृष्ठ 7

6 वही, पृष्ठ 1

7 वही, पृष्ठ 15

8 कबीर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, परिशिष्ट दो, कबीर वाणी, पृष्ठ 268

9 कासिका, डॉ.कमलाकर पांडे, पृष्ठ 22

10 वही, पृष्ठ 23

11 वही, पृष्ठ 27-28

12 वही, पृष्ठ 43

13 वही, पृष्ठ 31

14 वही, पृष्ठ 53

15 वही, पृष्ठ 54

16 वही, पृष्ठ 54

17 वही, पृष्ठ 78

18 मन में आसण मन में रहणां, मन का जप तप मन सूँ कहणां। कबीर ग्रंथावली, सं. डॉ. श्यामसुंदर दास, पृष्ठ 158

19 वही, पृष्ठ 77

20 वही, पृष्ठ 117